भारतीय सामाजिक एवं वैदिक परम्पराओं में निहित विज्ञान

डॉ. दुर्गादत्त ओझा
जोधपुर (राज.)

भारतीय जनमानस में वैदिक सनातन धर्म एवं सामाजिक परम्पराओं का जो स्वरूप आजकल देखने को मिलता है, उसे आज का तर्कशील और वैज्ञानिक दृष्टि रखनेवाला मानव अंधविश्वास, आस्था तथा रूढिवाद की संज्ञा देता है। प्रायः देखा जाता है कि तथाकथित पढ़े–लिखे लोग, जो अपने आपको बुद्धिजीवी मानते हैं, अपनी परंपराओं, रीति–रिवाजों, मान्यताओं के वर्तमान स्वरूप की या तो उपेक्षा करते हैं, या उन्हें अपने व्यंग्य और मनोरजंन का विषय बनाते है, जो कि सर्वथा गलत, अवैज्ञानिक तथा उनके अज्ञान का परिचायक है। वस्तुतः सनातन परम्पराओं का एक सुदृढ वैज्ञानिक आधार है। आज आवश्यकता है, मूल और मर्म को समझने की। प्रस्तुत आलेख में सनातन वैदिक धर्म, भारतीय संस्कृति से जुड़ी कुछ प्रमुख मान्यताओं, परम्पराओं और रीति–रिवाजों के पीछे जो गहरा विज्ञान है, उसे बड़े ही सरल एवं सहज तरीके से समझाने का प्रयास किया गया है।

1. शंख ध्वनि–भारतीय संस्कृति की यह परम्परा रही है कि किसी भी धार्मिक कार्य का शुभारम्भ एवं निरांजन (आरती) के समय शंख ध्वनि की जाती है। भारतीय वैज्ञानिक प्रो. जगदीश चन्द्र बसु ने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि, जहां तक शंख की ध्वनि (नाद) जाती है, वहां तक रोग के अनेक विषाक्त कीटाणु उस नाद को सुनने से नष्ट हो जाते है, फलतः वहां की वायु शुद्ध हो जाती है। सन् 1928 ई. में बर्लिन विश्वविद्यालय, जर्मनी में विज्ञान के एक आचार्य ने शंख ध्वनि पर अनुसंधान करके यह सिद्ध कर दिया है कि, शंख ध्वनि की लहरें बैक्टीरिया को नष्ट करने के लिए उत्तम एवं सस्ती औषधि है। प्रति सैकण्ड 27 घन फुट शक्ति से जोर से बजाया हुआ शंख 2200 फुट की दूरी के जीवाणुओं को नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त इससे हैजे, तपेदिक आदि के बैक्टीरिया भी नष्ट हो जाते हैं। जिस स्थान से ध्वनि की जाती है, इसके चारों ओर का स्थान भी निःस्सदेह कीटाणु रहित हो जाता है।

शिकागो के डॉक्टर डी. ब्राइन ने अब तक 1500 बहरे रोगियों को शंख ध्वनि के माध्यम से ठीक किया है। विदेशी वैज्ञानिकों ने शंख ध्वनि से मानसिक उत्कर्षता भी प्रेक्षित की है। इतना ही नहीं, शंख गूगों (Dumb) को वाक् शक्ति भी प्रदान करता है। इसी कारण छोटे–छोटे बच्चों के गले में छोटे–छोटे शंखों की माला पहनाने की परम्परा है। ऐसी मान्यता है कि इससे बच्चे जल्दी बोलने लग जाते हैं और उनकी आँखें भी खराब नही होती हैं। इस तथ्य की श्रेष्ठता होने से ही मन्दिरों में आरती के पश्चात भक्तों पर शंख का जल छिड़का जाता है। यूरोपीय वैज्ञानिकों ने भी शंख में मानव हितकारिणी विद्युत ऊर्जा मानी है। शंख में शुद्ध गंगाजल को अभिषिक्त करके पिलाया जाये तो कीटाणुजन्य रोग दूर हो जाते है। शंख ध्वनि करने वाले व्यक्ति को दमा की बीमारी, श्वास रोग, फेफड़ों के रोग आदि नहीं होते हैं। शंख में कैल्सियम, फॉस्फोरस एवं गन्धक की मात्रा होती है। अतः शंख में भरे जल को छिड़कने से वस्तु एवं मानव रोगाणुरहित हो जाते हैं।

2. दक्षिण दिशा में पैर करके नहीं सोना–हमारे यहां धार्मिक दृष्टि से कहा जाता है कि, दक्षिण दिशा में यमलोक का द्वार है। अतः इधर पैर करके नहीं सोना चाहिए। परन्तु इसका वैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्व है। हमारा पूरा शरीर एक चुम्बक है, जिसमें सिर की ओर उत्तरी ध्रुव (ऋण क्षेत्र) है। पृथ्वी में भी उत्तर की ओर उत्तरी ध्रुव एवं दक्षिण की ओर दक्षिणी ध्रुव रहता है। चुम्बकीय नियमानुसार यदि हम दक्षिण दिशा की ओर पैर करके सोते हैं, तो पृथ्वी एवं शरीर दोनों के ऋण क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा होगी एवं एक दूसरे को पास नहीं आने देगें। ऐसी दशा में पृथ्वी का

ऋण क्षेत्र जो कि शरीर के ऋण क्षेत्र की तुलना में बहुत प्रभावशाली है, शरीर को शक्तिहीन बना देगा । इससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के कारण दक्षिण दिशा में पैर नहीं करके सोने की सलाह दी जाती है।

3. करधनी पहनना–वैज्ञानिकों ने यह पाया है कि करधनी पहनने से बालक आंतों के रोग से बच जाते हैं और आंतों के अपने स्थान से हटने का भय जाता रहता है। यूरोप में पेट आदि के ऊपर पेटा बांधने की प्रथा है। सेना में भी पेटी कसकर तैयार रहना पड़ता है। कमर कसने की कहावत भी प्रसिद्ध है। कमर कसने से शरीर में चुस्ती एवं स्फूर्ति भी आती है तथा थकावट भी प्रतीत नहीं होती है। स्त्रियां इसी कारण करधनी का आभूषण पहनती हैं। स्त्री पुरूष इसीलिए अपनी धोती, साड़ी, पायजामा आदि कमर में (नाड़े द्वारा) कसते हैं।

4. यज्ञोपवीत धारण करना–सनातन धर्म में यज्ञोपवीत धारण करना एक महत्त्वपूर्ण संस्कार माना गया है। वस्तुतः यज्ञोपवीत, ऋण, कर्म, शरीर और उनके ग्रंथिबंधन आदि का प्रतीत है। वह व्रत धारण करने की प्रक्रिया का वैदिक उपोद्घात है। तीन धागों वाला यज्ञोपवीत वेद त्रायी, ऋग, सजु तथा साम की रक्षा करता है। तीनो लोकों, भू, भुवः और स्वः को भी निर्देशित करता है। इससे त्रिदेव – ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी सदैव प्रसन्न रहते हैं। यह यज्ञोपवीत ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य में सत्व, रज और तम इन तीन गुणों का साम्य भी रखता है। मल, मूत्र त्यागते समय यज्ञोपवीत (जनेऊ) को दाहिने कान पर ले जाते हैं।

"यज्ञोपवीते शिरसि दक्षिणे कर्णे वा कृत्वा"

बौधायन गृह सूत्र (4/6/1) में उल्लेख है कि पुरूष नाभि के ऊपर शुद्ध तथा नीचे अशुद्ध है। अतः यज्ञोपवीत को शौचादि के समय नाभि से ऊंचा ले जाते हैं।

विज्ञान के अनुसार हमारे कान के पिछले हिस्से पर शरीर के तंत्रिका संस्थान की एक महत्वपूर्ण नाड़ी जिसे "वेगस नर्व" कहते हैं, होती है। इससे अल्डरमेन्स नर्व भी कहते हैं। यदि शरीर के परानुकम्पी तंत्र (parasympathetic system) को उत्तेजित किया जाये तो शरीर में मल–मूत्र के विसर्जन में आसानी रहती है। कब्ज एवं देरी से मूत्र लगने वाले रोगियों को यज्ञोपवीत इस प्रकार कान में लपेटना चाहिए जिससे वह कान के पिछले हिस्से पर पूर्ण सम्पर्क में आ जाये । आयुर्वेद के अनुसार दाहिने कान की एक विशेष नाड़ी को 'लोहितिका' कहते हैं। यदि इस नाड़ी को दबा दिया जाये तो पूर्ण स्वस्थ्य व्यक्ति का भी पेशाब निकल आता है, क्योंकि उसका उत्सर्जन तंत्र के अंगों से सीधा सम्बन्ध होता है। ऐसी भी मान्यता है कि हिरणियां नामक रोग का इलाज करने के लिए वैद्य लोग दाहिने कान की नाड़ी का छेदन करते हैं। वस्तुतः यही यज्ञोपवीत धारण करने का वैज्ञानिक महत्व है।

5. **संध्योपासना**–वस्तुतः संध्या शब्द का अर्थ है–संधिकाल में आगमिष्यमाण प्राण रूप देवता की अराधना करना। सूर्यप्रकाशोंपलक्षित काल अर्थात् अहः और रात्रि के संधिकाल में पार्थिव वाक् सौरवाक और उन दोनों के मध्यवर्ती आंतरिक्ष्य वाक् का संधान (मेल) होता है। इसी कारण से इस काल का नाम संध्या है। तथा इसी में संध्योपासना की जाती है। हमारे यहां एक सामान्य नियम है कि संध्या पूजा आदि के समय हम कुशा, उर्णवस्त्र और रेशमी वस्त्र को पवित्र मानते है। इनका ही आसन रखते हैं और शरीर पर ओढ़ने की आवश्यकता हो, तो भी ऊर्णा या रेशम का ही वस्त्र लेते हैं। इनका भी वैज्ञानिक महत्व है। वस्तुतः उपर्युक्त तीनो वस्तुएं ऐसी है, जिनसे होकर विद्युत शक्ति प्रवाहित नहीं होती। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जप, पूजा आदि के द्वारा अन्तःकरण में संचित हमारी शक्ति को पृथ्वी अपने आकर्षण बल से खींच ना ले, इसलिए ऐसी वस्तुएं बीच में दे दी जाती हैं, जिनमें होकर विद्युत के आकर्षण का प्रभाव ही न पड़ सके।

(i) आचमन कर्म का वैज्ञानिक रहस्य–संध्योपासन में आचमन कर्म का विशिष्ट महत्व है। इस आचमन क्रिया द्वारा विज्ञानमय आध्यात्मिक सूर्य को अर्ध्य प्रदान किया जाता है। यह क्रिया सूर्य को अर्ध्य प्रदान करने से पूर्व की जाती है क्योंकि सूर्य ही स्थावर, जंगम विश्व की आत्मा है–"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" यह श्रुति प्रतिपादित कर रही है। जिस प्रकार बाह्य आधिदैविक सूर्य रश्मि की निर्मलता पार्थिव कृष्ण रश्मिरूप तमः परिहार के लिए अर्ध्य प्रदान किया जाता है, उसी प्रकार आंतरिक (आध्यात्मिक) सूर्य रश्मियों की निर्मलता तथा मेध्यतार्थ आचमन किया जाता है। यह आचमन भी दो प्रकार का होता है–समंत्राक आचमन एवं निरमंत्राक आचमन। इस तथ्य को शतपथ ब्राह्मण में "व्तमुपैष्यन्नप उपस्पृशति" इत्यादि वाक्य द्वारा प्रकट किया गया है।

वस्तुतः जल को पवित्र माना गया है। यह मलिनता को धो देता है और दो वस्तुओं को आपस में संयुक्त कर देता है। इस कारण जल को पवित्र एवं मेध्य कहा जाता है।

(ii) अर्ध्य देना – ऐसी मानता है कि सूर्योदय के समय की सूर्य की किरणें हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होती हैं। जलाशय में नाभि तक शरीर को पानी में डुबा कर हाथ से तांबे के अर्ध्य पात्र में जल डाल कर अर्ध्य देने से कई लाभ प्राप्त होते हैं। क्योंकि पानी एवं तांबा दोनों विद्युत के सुचालक होने से एक धारा बनती है जिससे नेत्र ज्योति ठीक बनी रहती है और रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ जाती है।

प्रातःकाल की सूर्य रश्मियां, अमृत प्रभाव रखती हैं। सूर्य नमस्कार प्रक्रिया से रक्त परिभ्रमण की गति में वृद्धि होती है, जिससे अर्गोस्ट्रोल का निर्माण होता है, जो कि अन्ततः विटामिन–डी में परिवर्तित होता है। यह आंतों में अम्ल क्षार की मात्रा को संतुलित रखने में सहायक होता है। सूर्य रश्मियों की सहायता से संश्लेषण प्रक्रिया में सहायता मिलती है, जिससे अस्थि संरचना के घटक फॉस्फोरस एवं कैल्सियम का उचित मात्रा में निर्माण होता रहता है। सूर्य नमस्कार से शरीर के समस्त अंगों की मांस पेशियों में दृढता एवं सुविकास होता है, पाचन शक्ति में वृद्धि, वायु विकारों का समन एवं मेद का जमाव नहीं होता है। इसी प्रकार प्राणायाम से फेफड़ों में वायु सामर्थ्य शक्ति में वृद्धि, हृदय, मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र में उत्तेजना का संचार होता है।

6. स्नान करना – स्नान करना यद्यपि दैनिक क्रिया है, इससे शरीर स्वच्छ हो जाता है तथा मानसिक क्रिया दुरूस्त रहती है। परन्तु इसका वैज्ञानिक दृष्टि से भी बहुत महत्व है। स्नान करने से शरीर से चिपके कीटाणु निकल जाते हैं। जिससे शरीर रोगमुक्त हो जाता है। इसके साथ ही साथ शरीर के रोमकूपों से पानी शरीर में प्रवेश करता है जिससे शरीर की शुष्कता नष्ट हो जाती है और मन भी प्रफुल्लित हो जाता है।

कुछ लोग कभी–कभी भोजन के बाद स्नान करते हैं यह वैज्ञानिक दृष्टि से सही नहीं है क्योंकि भोजन के पश्चात् हमारे शरीर की आंते भोजन पचाने के कार्य में लग जाती हैं। अतः भोजन के तुरंत बाद स्नान करने से शरीर शीतल हो जाता है और भोजन पचने का कार्य रूक जाता है। इस प्रकार समयानुसार भोजन न पचने के कारण पेट में अपच, खट्टी डकारें, गैस आदि का विकार उत्पन्न हो जाता है। जबकि भोजन से पहले स्नान करने से भूख बढ़ जाती है। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से भी स्नान करना अति आवश्यक है।

7. प्याज–लहसुन का प्रयोग निषेद्य – सनातन परम्परा में सदैव सत्व गुण को प्रधानता दी गई है । प्याज एवं लहसुन का सेवन करने से व्यक्ति के चित्त में तामसी प्रवृत्ति की वृद्धि होती है जो कि शारीरिक उत्तेजना बढ़ाती है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी प्याज एवं लहसुन में विद्यमान रसायनिक यौगिक मुख्यतः गन्धकयुक्त टरपिन्स आदि कामोन्मुकता को बढ़ावा देते है। इसी कारण पुरातन ऋषि–मुनियों ने इनके सेवन का निषेद्य किया है जो कि विज्ञान सम्मत भी है।

8. बिन्दी लगाना – हमारे यहां ललाट पर भौहों के मध्य चन्दन की बिन्दी या तिलक लगाने की परम्परा है विज्ञान की दृष्टि से भी जब हम मस्तिष्क से आवश्यकता से अधिक काम में लेते हैं तब ज्ञान तंतुओं के विचारक ज्ञान केन्द्र या आज्ञाचक्र को, जो कि ललाट के मध्य भाग में होता है, पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। अतः इस स्थान पर लगाया गया चन्दन का तिलक या बिन्दी मस्तिष्क को शीतलता प्रदान करते हैं। वैद्यों के अनुसार जो व्यक्ति प्रातःकाल स्नान के बाद नित्य चन्दन का तिलक लगाते हैं उन्हें सामान्यतया सिर दर्द की शिकायत नहीं होती है।

इसी प्रकार लाल बिन्दी या तिलक लगाने से ऊर्जा का अधिकतम अवशोषण संभव होता है, क्योंकि वर्णपट्ट के लाल रंग की तरंग दैर्घ्य सबसे अधिक होती है। हमारे यहां कान, नाक को छिदवाना जहां सौन्दर्य का बोधक है, वहीं विज्ञान ने भी स्वीकारा है कि उससे शरीर के विभिन्न स्रावों पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

9. **भारतीय परम्परा में हाथ मिलाना अनुचित एवं रोगकारक**–वस्तुतः हमारे देश में पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करने से ही हस्तमिलाप या हैण्डशेक की परम्परा का उदय हुआ। अब यह प्रायः वैश्विक हो चुकी है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बढ़ते हुए सर्वव्यापी संदूषण, प्रदूषण–संक्रमण द्वारा त्रिविध दण्डित पर्यावरण में हस्तमिलाप से पर्याप्त स्पर्श होते रहने के कारण संसर्गज या छुतहा रोगों का हस्तान्तरण संभव है।

हस्तमिलाप की अपेक्षा नमस्कार की परम्परा अधिक सुरक्षित एवं वैज्ञानिक प्रतीत होती है। इसके द्वारा संसर्गज संक्रमण या संदूषण की संभावना नहीं रहती है और मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी अच्छे होते हैं। वैज्ञानिकों ने प्रेक्षित किया है कि हस्तमिलाप तथा अन्य संस्पर्शीय क्रियाओं द्वारा त्वचा रोग ही नहीं अपितु अन्य कई संक्रामक रोगों के रोगाणु घर्षण, नमी, पसीना और तापमान के सम्मिलित प्रभाव से परस्पर हस्तान्तरित होकर फैल सकते हैं।

विभिन्न प्रकार के संसर्गज रोग–हस्तमिलाप, शौचालय, चिकित्सालय, व्यायामशाला, विद्यालय, कार्यालय, सार्वजनिक स्थल, रेल–हवाई–बस यात्रा, पालतू पशु आदि के संसर्ग से कई रोगों के जीवाणु या रोगाणु स्वच्छता के अभाव में फैलते हैं, इनके मुख्य उदाहरण हैं–यकृत शोथ या हिपेटाइट्स, अतिसार या डायरिया, पेचिश या डिसेंट्री, तंत्रिका शोथ या मेनिंजाइटिस, इन्फ्लुएंजा बुखार, तीव्र अतिपाती सलक्षण या सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिन्ड्रोम (सार्स), क्षयरोग या रेस्पिरेटरी ट्यूबरक्युलोसिस, नेत्र श्लेष्मा (शोथ) या कन्जंक्टीवाइटिस, सर्दी, जुकाम, आंत्र ज्वर या टाइफाइड, खसरा या मजीलस, कुष्ठ रोग या लेप्रोसी तथा पेरिसर्प या हरपीज।

मानव त्वचा का क्षेत्रफल औसतन दो वर्गमीटर होता है, अर्थात् त्वचा हमारे शरीर की सबसे बड़ी ज्ञानेन्द्रिय है, जिसकी सही देखभाल नहीं होने अथवा प्रतिकूल अवस्था में त्वचा रोगों की संभावना बढ़ जाती है। ऐसा देखा गया है कि त्वचा में दोहरी परत होने के बावजूद स्पर्श के दौरान रोगाणुओं की पारगम्यता तथा अंतरण पर रोक नहीं लग पाती है।

निसंक्रामक रसायन – यह अनुभव किया गया है कि हस्त प्रक्षालन एवं विसंक्रमण हेतु मिट्टी या राख का प्रयोग नहीं होने के कारण आज बाजार में प्रतिजीवाणु या ऐंटीबैक्टीरियल और रोगाणुनाशी या डिसइंफेक्टेंट के रूप में लगभग सात सौ उत्पाद बाजार में उपलब्ध हैं। इन उत्पादों में मुख्यतः द्रव साबुन या डिटर्जेंट, रंग, सुगंधित यौगिक एवं परिरक्षक रसायन होते हैं। कीमती हैंडवाश या हस्तप्रक्षालकों में फार्मलीन, साइट्रिक अम्ल, ग्लिसरीन, क्रोकोडाईएथेनाल अमाइड, सोडियम लारेथ सल्फेट तथा ट्राईक्लोसन का संयोग होता है।

सामान्यतया ऐंटीबैक्टीरियल प्रक्षालक मात्र बैक्टीरिया का शमन करते हैं और विसंक्रामक उत्पाद रोणाणु या वायरस, फफूंद एवं बैक्टीरिया को भी समाप्त करते है। बाजार में भी ऐसा देखा गया है कि निर्माता कुछ ऐंटीबैक्टीरियल उत्पाद पर डिसइंफेक्टेंट (Disinfectant) का लेबल तथा इसके विपरीत भी लेबल लगाते हैं। एथिल ऐल्कोहल युक्त प्रक्षालक बैक्टीरिया और वायरस दोनों को नष्ट करते हैं, परन्तु इनका उपयोग हाथों को कष्टदायक स्तर तक सूखा कर देता है।

प्रायः सभी ब्रांड की ऐंटीबैक्टीरियल टिकियाँ या द्रव प्रक्षालकों में ट्राईक्लोसन डाला जा रहा है। कुछ साबुनों में ट्राईक्लोरो–कार्बानिलाइड या टीसीसी के रूप में होता है। वस्तुतः ट्राईक्लोसन रोगाणु या वायरस को नष्ट करने में अप्रभावी होता है। जिस प्रकार लंबे प्रयोग के दौरान एंटीबायोटिक दवाओं के प्रतिरोधी बैक्टीरिया का निर्माण होता है और दवा अल्प प्रभावी या अप्रभावी हो जाती है, उसी प्रकार ट्राईक्लोसन के लंबे प्रयोग से समस्या उत्पन्न हो सकती है। अतः ट्राईक्लोसन युक्त हस्त प्रक्षालक का उपयोग नहीं करना चाहिए।

10. हाथ जोड़कर अभिवादन की सुरक्षित परंपरा – भारतीय अभिवादन परम्परा की वैज्ञानिक विशेषता सर्वत्र प्रशंसनीय है। वस्तुतः नमस्ते शब्द की रचना संस्कृत भाषा के 'नमः' और 'ते' शब्दों के मिलान से हुई है। नमः + ते त्र नमस्ते। 'नमः' शब्द का अर्थ होता है 'झुकना' और 'ते' का अर्थ है 'तेरे लिए' । अर्थात् नमः शब्द में 'ना मा' (मेरा नहीं) का योग देखें तो विदित होगा कि वैदिक अभिवादन का एक आध्यात्मिक आशय भी है, यानि अहं को समाप्त कर आदरपूर्वक घनिष्ठ संपर्क की अनुभूति उत्पन्न करना। इस प्रकार नमस्कार करने से सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। तो आइए आज से ही हम हाथ न मिलाकर हाथ जोड़कर ही अभिवादन करने की पुरातन परंपरा को निभाएंगे।

11. रूद्राक्ष धारण करना विज्ञान सम्मत–रूद्राक्ष प्रकृति की एक ऐसी विलक्षण वस्तु है, जिसका वर्णन व माहात्म्य हमारे अनेक प्राचीन ग्रंथों में वर्णित है। रूद्राक्ष के वृक्षों पर लगने वाले फल के बीज को रूद्राक्ष कहते हैं। यह एक दिव्य शक्ति बीज है, जो शिवतत्व से जुड़ा है। इसमें आध्यात्मिक विश्वरूपता के साथ–साथ विद्युत चुंबकीय गुण भी हैं। रूद्राक्ष धारक के व्यक्तित्व में बदलाव, आकर्षण–शक्ति में वृद्धि, आत्मविश्वास तथा भौतिक सुख–साधनों में प्राप्ति के योग धनात्मक रूप से आने लगते हैं।

जाबालोपनिषद्, जिसे जाबाल ऋषि ने रचा था, में रूद्राक्ष के गुण–धर्म के बारे में विस्तार से बताया गया है। इस विचित्र बीज पर गहरा शोध करने के बाद (जगबाल ऋषि) काशी नरेश के राजवैद्य बन गए। अपनी चिकित्सा में वे रूद्राक्ष का बहुत प्रयोग करते थे। उन दिनों अन्य वैद्य भी इसका प्रयोग रोग–निवारण में करने लगे। जाबाल एक सन्यासी थे, इस कारण रूद्राक्ष को सन्यासियों से जोड़ दिया गया। आज भी आप अधिकतर सन्यासियों को रूद्राक्ष की माला धारण करते देखते हैं।

रूद्राक्ष धारण करने वाले के जीवन में सुखद बदलाव किसी जादू–मंत्र के कारण नहीं अपितु इसके प्राकृतिक गुण–धर्म, जिनका वैज्ञानिक आधार है, के कारण आता है। शोध करने के बाद आधुनिक वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि रूद्राक्षमाला का शरीर की त्वचा से घर्षण होने पर मनुष्य के शरीर में एक प्रकार का ह्यूमन मैगनेटिज्म (मानव चुंबक) एवं ह्यूमन इलेक्ट्रीसिटी (मानव विद्युत) का निर्माण होता है। शोध के बाद यह भी सिद्ध हो गया है कि मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक विद्युत और रूद्राक्ष में विद्यमान विद्युत, दोनों में एक जैसी दो मिलिवोल्टेज (2 Milivolts) की शक्ति होती है। एक जैसी शक्ति होने के कारण यह मानव शरीर के अनुरूप कार्य करती है और उसमें मानसिक व शारीरिक परिवर्तन लाती है।

रूद्राक्ष में जो इलेक्ट्रोमैगनेटिक (Electromagnetic) और पैरामैगनेटिक शक्ति होती है, वह इसके धारक के मस्तिष्क में ऐसी शक्ति भेजती है जो मस्तिष्क के सकारात्मक केन्द्रों को सक्रिय करती है, जिसके कारण उसके धारक व्यक्ति की सोच में परिवर्तन आता है और उसके अनेकों मनोरोग (मानसिक तनाव, उदासी, अल्प स्मरण–शक्ति आदि) दूर हो जाते हैं। यहीं नहीं, रूद्राक्ष से निकलने वाली सकारात्मक तरंगे इसके धारक की नकारात्मक सोच खत्म करती हैं।

मानसिक रोगों के अतिरिक्त रूद्राक्ष शारीरिक रोग निवारक औषधि भी है। यह ब्लडप्रेशर (रक्तचाप) को नियंत्रित करता है और दमा, अनिद्रा, तंत्रिका (Nervous) हृदय रोग, ज्वर, जुकाम आदि व्याधियों में भी बहुत उपयोगी है। कुछ हद तक यह मधुमेह (डायबिटीज) को भी कम करता है। इसे धारण करने के अतिरिक्त इसका प्रयोग कई और प्रकार से भी होता है, जैसे दूध में उबालकर, घिसकर शहद के साथ लेना, जलाकर इसकी भस्म खाना आदि ।

रूद्राक्ष में कई प्रकार के खनिज व धातु पाए जाते हैं जैसेः– ताँबा, मैगनीशियम, लोहा, चाँदी, सोना और बेरियम। आम आदमी के लिए रूद्राक्ष में पाए जाने वाले इन खनिज–धातुओं का कोई मतलब नहीं है। परंतु डॉक्टरों के लिए इसमें पाए जाने वाला सोना और बेरियम हृदय रोग को ठीक करने की क्षमता रखते हैं।

सन् 1860 में एक अंग्रेज ऑफिसर जॉन ग्रेट ने रूद्राक्ष के विषय में अनेक महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त की थी। अमेरिका के डॉक्टर एवं ऐबराहिम जार्जु ने रूद्राक्ष के औषधीय गुणों का गहरा अध्ययन किया। शोध के बाद उसका मानना था कि रूद्राक्ष में निश्चित रूप से मानसिक रोगों को ठीक करने की क्षमता है। विशेष रूप से तनाव को दूर करने व मानसिक प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करने का गुण रूद्राक्ष में है। कुछ वैज्ञानिकों का तो मानना है कि रूद्राक्ष माला एक प्रकार का 'ऐंटिना' है, जिसमें सब प्रकार की नकारात्मकता को नष्ट करने की शक्ति है। इसी कारण रूद्राक्ष माला को धारण करने वाले व्यक्ति नकारात्मक सोच से दूर रहते हैं।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि रूद्राक्ष भारत में ही नहीं अपितु नेपाल, सिक्किम, भूटान, मलेशिया, इंडोनेशिया, ब्राजील, जावा और म्याँमार में भी पाए जाते हैं। इंडोनेशिया में रूद्राक्ष से इंजेक्शन बनाए जाते हैं, जिन्हें चीन को निर्यात किया जाता है। इसी प्रकार, जर्मनी में रूद्राक्ष पर गहन शोध हुआ है और उन्होंने भी इस बात का प्रतिपादन किया है कि, रूद्राक्ष में चुंबकीय शक्ति होती है, जो मनुष्य पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ती है।

खेद का विषय है कि, भारत में आधुनिक युग में रूद्राक्ष पर कोई सार्थक शोध नहीं हुआ है। परंतु व्यक्तिगत रूप से कुछ लोगों ने इस पर अध्ययन अवश्य किया है। यहाँ एक आश्चर्यजनक बात यह है कि, हजारों वर्ष पहले हमारे ऋषि–मुनियों ने रूद्राक्ष पर जो शोध किया था, वह आज के वैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोध से कहीं अधिक आगे है, क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिकों को तो अभी रूद्राक्ष के कई और रहस्यों को जानना बाकी है। अभी तो उन्हें यह जानना शेष है कि रूद्राक्ष का अर्थ हैः– वह शक्ति जो मनुष्य के मन से सब प्रकार के भय को भगा देती है, यहाँ तक कि, उसे मृत्यु का भी भय नहीं रहता। ग्रहदोष भी उसका अनिष्ट नहीं कर पाते। यह एक पापनाशक वनस्पति है, जिसे भगवान् शिव का आर्शीवाद प्राप्त है। रूद्राक्ष की माला पर किए जाने वाले मंत्रों का जप कई गुना अधिक होता है। ये ऐसे तथ्य हैं, जिनकी खोज और शोध आज के वैज्ञानिकों को अभी करना बाकी है।

रूद्राक्ष के फल गुच्छों में लगते हैं और मई–जून में निकलते हैं तथा सितंबर से नवंबर तक पक जाते हैं। रूद्राक्ष निकालने के लिए इसके फल को कई दिन पानी में भिगोकर रखा जाता है। फिर बाद में उससे गुच्छा हटाकर रूद्राक्ष प्राप्त किया जाता है। रूद्राक्षमणि चार रंग की होती है :– श्वेत, ताम्र, पीत और श्याम। रूद्राक्ष में जो छिद्र होता है, वह प्राकृतिक ही होता है, बस उसे सूई

द्वारा खोलकर साफ किया जाता है। रूद्राक्ष के संबंध में एक अद्भुत बात यह है कि इसके एक ही पेड़ पर एक से चौदह मुखी तक के रूद्राक्ष पाए जाते हैं, जबकि आँवले के पेड़ पर एक ही तरह के यानी सात फाँक वाले फल लगते हैं। यह भी प्रकृति का एक आश्चर्य है। शास्त्रों में एक मुखी से चौदह मुखी रूद्राक्षों का ही वर्णन है, किंतु प्रकृति में इक्कीस मुखी तक के रूद्राक्ष पाए गए हैं। कई विशेषज्ञों का मंतव्य है कि जिस प्रकार 27 नक्षत्र होते हैं, उसी तरह 27 मुखी तक रूद्राक्ष हो सकते हैं। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि अलग–अलग मुखी रूद्राक्ष का अलग–अलग आध्यात्मिक व भौतिक प्रभाव होता है। यह इस कारण होता है, क्योंकि अलग–अलग मुखी रूद्राक्ष की शक्ति और चुंबकीय क्षमता भिन्न–भिन्न होती है।

तंत्रशास्त्र के अनुसार देह के विविध अंगों पर धारण करने वाली रूद्राक्ष मणि की संख्याएँ भी भिन्न–भिन्न है। जैसेः ग्रीवा कंठ में 32 या 27 रूद्राक्ष की माला धारण करनी चाहिए, मस्तक पर 40, प्रत्येक कान में 6–6, प्रत्येक हाथ के मणिबंध में 12–12 और प्रत्येक हाथ पर बाजूबंद में 16–16 रूद्राक्ष मणि को धारण करना चाहिए।

मंत्रजाप की माला में 108 मणि तथा एक सुमेरूमणि होनी चाहिए। रूद्राक्ष मणियों के मुख एक–दूसरे के आमने–सामने होने चाहिए, वरना उसका प्रभाव कम हो जाएगा। सुमेरूमणि का मुख ऊर्ध्व (ऊपर की ओर) रखना चाहिए। माला का धागा (डोरा) रेशम का मजबूत होना चाहिए अथवा सोने या चाँदी के तार में माला गूँथनी चाहिए। इस प्रावधान का वैज्ञानिक आधार यह है कि ये सभी माध्यम विद्युत के सुचालक हैं, जो रूद्राक्ष की विद्युत शक्ति को बनाए रखने में सहायक होते हैं।

12. पर्यावरण संरक्षण की परम्पराएं – पर्यावरण संरक्षण प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति और जीवनशैली का अभिन्न अंग रहा है। प्रकृति प्रेम तथा आदर की भारतीय परम्परा अति प्राचीन है, जिसका प्रारम्भ वैदिक युग से ही हुआ। प्रकृति के माध्यम से जीवन की मंगल कामना करना यह हमारे वेदों की विशेषता रही है। वेदों का संदेश है कि मानव शुद्ध वायु में श्वास ले, शुद्ध जल का पान करे, शुद्ध अन्न, फल, भोजन का आहार करे, शुद्ध मिट्टी से खेले कूदे तथा कृषि करे। छान्दोग्यौपनिषद् में भी इस बात की पुष्टि की गयी है किः– "आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ धुवास्मृतिः, स्मृतिलाभे सर्वग्रथीनां विप्रमोक्षः" अर्थात् आहार से मन शुद्ध हो जाता है, शुद्ध मन स्मृति को दृढ करता है, तथा दिव्य स्मृति को पाकर मनुष्य अपने सभी बंधनों से मुक्त हो सकता है, तथा उसे वेद प्रतिपादित आयु "शतं जीवेम शरदः शतम्" भी प्राप्त हो सकती है। आज तथाकथित औद्योगिकरण तथा आधुनिकीकरण से कुछ भी शुद्ध नहीं बचा है। आज का आधुनिक विज्ञान भी यह मानता है कि "जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन" । पूर्वकाल में हमको शिक्षा भी यही दी जाती थी कि हम प्रकृति के विभिन्न संसाधनों का अत्यधिक संरक्षण करें, उनका कम दोहन करें, न कि शोषण, तथा कम दोहित संसाधनों का अधिकतम उपयोग करें । हमारी वैदिक संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण की अनेक धारणाएँ हैं।

पुराण एवं वन्यजीव–हमारे अट्ठारह पुराण प्रकृति के विकास क्रम को दर्शाते हैं। यदि इनके नामकरण आदि का अध्ययन किया जाय तो सृष्टि का विकास स्वतः सिद्ध हो जाता है, जो कि विज्ञान सम्मत है। यदि जलचरों को ही लें तो मत्स्यपुराण, हंसपुराण तथा कूर्मपुराण सामने आते हैं। थलचरों (पशुओं) का प्रतिनिधित्व वाराहपुराण द्वारा हो जाता है। वनस्पति जगत के लिए पद्मपुराण है, तो पक्षी जगत के लिए गरूड़ पुराण। शरीर शास्त्र के लिए लिङ्ग पुराण, प्राकृतिक तत्त्वों के नाम पर अग्नि पुराण तथा नरों के नाम पर नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण तथा वामन पुराण के नाम लिये जा सकते हैं। इसी प्रकार ईश्वरीय शक्ति का प्रतिनिधित्व ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, शिव पुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण करते हैं।

इसके अतिरिक्त हमारे 24 अवतारों में गरूड़ावतार व हंसावतार, पक्षियों की प्रतिष्ठा के प्रतीक हैं। वाराहावतार तथा नृसिंहावतार पशुओं के एवं मत्स्यावतार व कूर्मावतार जलजीवों के

सम्मान के द्योतक हैं। इन पुराणों में प्रकृति के हर पक्ष को मान्यता मिली है तथा इनके द्वारा जीवों का संरक्षण भी होता है।

पशु–पक्षियों की पूजा की परम्पराः–हमारी संस्कृति में वन्यजीवों को सांस्कृतिक, सामाजिक तथा धार्मिक धरोहर के रूप में प्रमुख स्थान दिया गया है। हमारे यहाँ वन्यजीव कई देवी–देवताओं के वाहन के रूप में भी पूज्यनीय हैं। जैसेः माँ दुर्गा का सिंह, भगवान विष्णु का गरूड़, ब्रह्मा का हंस, शंकरजी का वृषभ, इन्द्र का हाथी, गणेश जी का मूषक, कार्तिकेय का मयूर, यहाँ तक कि शीतला माता का वाहन गधा तथा भैरोजी के वाहन कुत्ते भी पूज्यनीय हैं।

हमारे यहाँ पशु–पक्षियों की उपयोगिता एवं महत्त्व को जीवन के हर क्षेत्र में स्वीकारा गया है, तथा उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए विभिन्न त्यौहार मनाने की परम्पराओं का विकास भी किया गया है। यथा गाय व बछड़े की महत्ता प्रकट करने हेतु बछबारस एवं गोपाष्टमी को तथा सर्प की नागदेवता के रूप में नागपंचमी एवं गोगानवमी को पूजा होती है। श्राद्धपक्ष में कौए को आमंत्रित कर ग्रास दिया जाता है, बंदरों को हनुमान जी का रूप मानकर चना, गाजर इत्यादि खिलायी जाती है। इसी प्रकार मोर, कबूतर, चींटियों को दाना डालने की परम्परा आज भी विद्यमान है। वस्तुतः इन सभी के पीछे वैज्ञानिक अभिप्राय यह है कि ये प्रजातियाँ लुप्त न हों तथा सभी का जीवन संतुलित रूप से चलता रहे।

वेदों में अनेक स्थानों पर हिंसा को निषेध किया गया है। यजुर्वेद के प्रारम्भ में ही "पशुन पाहि" शब्द आता है, जिसका अर्थ है पशुओं की रक्षा करो। इसके अतिरिक्त "शन्नों अस्तु द्विपदे चतुष्पदे" जिसका अर्थ पशु–पक्षियों में शांति हो, आदि का उल्लेख है। यजुर्वेदीय रूद्राष्टाध्यायी में उल्लेख हैः–"पशूनां पतये नमो, त्रयविश्च च में दिव्यवाट च में, पष्टपाट् च में, अर्थात् भगवान शंकर पशुओं के भी देवता है तथा उनका संरक्षण करते हैं। यह उनके स्वास्थ्य की मंगल कामना हेतु कहा गया है।

दैनिक पाँच यज्ञों की परम्पराः–पर्यावरण शुद्धि के लिए आज सम्पूर्ण विश्व चिंतित है एवं प्रतिवर्ष करोड़ों रूपये इस विकराल समस्या से छुटकारा पाने के लिए खर्च किये जा रहे हैं। परन्तु इस समस्या का निदान अभी तक नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में हमारे वेदों में वर्णित प्राण ऊर्जा विज्ञान पर आधारित यज्ञ प्रक्रिया ने एशिया, यूरोप व अफ्रीका के वैज्ञानिकों को अपनी ओर आकर्षित किया है, एवं मानव के उज्ज्वल भविष्य के प्रति उन्हें आश्वस्त किया है।

वैदिककाल में प्रकृति के विभिन्न रूपोंः–सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, पृथ्वी आदि के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए उन्हें देव रूप प्रदान किया गया है। हमारे अथर्ववेद में कहा गया है –"मातृभूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः" अर्थात् पृथ्वी मेरी माता है, और मै उसका पुत्र हूँ। वेद के अनुसार मानव के उत्थान का मार्ग "यज्ञमय जीवन" ही है। यज्ञ की महत्ता भगवान कृष्ण ने गीता के तीसरे अध्याय में इस प्रकार की है–

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः"।।

अर्थात् सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है। वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ कर्मों से उत्पन्न होता है।

यज्ञ से न केवल वायु ही शुद्ध होती है वरन् उसके सम्पर्क में आकर जल तथा मृदा भी शुद्ध होती है। यज्ञ–भस्म को भी एक अनुपम उर्वरक के रूप में पाया गया है। इससे खेतों का अन्न अधिक पौष्टिक, स्वादिष्ट तथा स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। यज्ञ के धुएं मे एसिटिक अम्ल होता है जो फसल में रोग फैलाने वाले कीड़ों को नष्ट करता है। कई विदेशी विद्वानों ने यज्ञ में दी जाने वाली सामग्री यथाः–तिल, घी, चीनी एवं अन्य पदार्थो के जलने से उत्पन्न धुएं का विश्लेषण कर पाया कि,

इससे समीपस्थ क्षेत्र में कीड़े समाप्त होते हैं। चर्मरोग, रक्तचाप एवं दमा आदि रोगों के कीटाणु समाप्त हो जाते हैं। यज्ञ के धुएं से समीप की वनस्पतियॉ भी सुप्रभावित होती हैं तथा पौध एवं फसल वृद्धि भी होती है। अतः यज्ञ करना हमारा दायित्व ही नही वरन् एक राष्ट्रीय कर्तव्य होना चाहिए।

वृक्ष सुरक्षा के निर्देश:–वस्तुतः जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक वृक्ष हमारे काम आते हैं। भूमि की उर्वरा शक्ति के संरक्षण हेतु भू–क्षरण, भूस्खलन तथा बाढ़ को रोकने में भी वन सहायता करते हैं। जन्तुओं एवं वनस्पतियों के बीच आवश्यक संतुलन बनाये रखने में वृक्ष ऑक्सीजन तथा कार्बन डाई ऑक्साइड का निश्चित अनुपात बनाये रखते हैं। वृक्ष काटने के बारे में वेद निषेध करते हुए निर्देश देते हैं कि, जिस वृक्ष पर पक्षियों के घोंसले हों उन वृक्षों को एवं देवालय तथा शमशान भूमि पर उगे वृक्षों को नही काटना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूध वाले वृक्षों जैसे, बड़, पीपल, बहेड़ा, अरंड तथा नीम आदि के वृक्षों को भी नही काटना चाहिए।

उद्यान–देवालय–पितृवन–वलीकमार्गचितिजातः
कब्जोर्ध्व–शुष्क–कण्टकवल्लीवृन्दारकयुक्ताश्च।।
बहुविहगालय कोटरपवनानतापीड़िताश्य ये तरवः
ये च स्युः स्त्रीसंज्ञा न ते शुभाः कर्तनीयाः।।

अर्थात्, उद्यान, मंदिर, पितृवन, दीमक की बांबी एवं जिन वृक्षों पर लताएं फैली हों, उन्हें नहीं काटना चाहिए। यदि किसी अपरिहार्य कारण से पेड़ काटना भी पड़े, तो वृक्ष से क्षमा मांगनी चाहिए तथा उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षियों से भी प्रार्थना करें कि वे उस वृक्ष को छोड़कर अन्य चले जायें।

यानीह भूतानि वसन्ति तानि, बलिं गृहत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्।
अन्यत्र वांस परिकल्पयुन्तु, क्षमन्तु तेऽस्मान नमोऽस्तुंतेभ्यः

हमारी वैदिक संस्कृति में वृक्षों को भी देवता माना गया है। वृक्ष भी रूद्र के रूप में है क्योकि वे विषैली गैसों को पीकर अमृतमयी गैस निकालते हैं। हमारे यजुर्वेद के रूद्राष्टाध्याय में वृक्षों को सींचना, शिव की आराधना मानी गयी है, क्योंकि भगवान शंकर को वनों का अधिपति तथा रक्षक माना गया है।

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेषेभ्यः–वनानां पतये नमः।
वृक्षाणां पतये नमो, औषधीनां पतये नमः।
अरण्यानां पतये नमः नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः

हमारे भारतीय संस्कार एवं त्योहार वृक्षों के बिना सम्पन्न नहीं हो पाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में 'अश्वथः सर्ववृक्षाणाम्'' कहकर विभूतियोग में वृक्षों का गान किया है। इसी प्रकार तुलसी का पेड़ हमारे देश के हर हिन्दू परिवार के घर में मिलता है तथा इसके औषधीय एवं पर्यावरणीय महत्व को सम्पूर्ण विश्व जानता है। इस पौधे के पार्श्व क्षेत्र में कीटाणु तथा विषैले जीव–जन्तु प्रवेश नहीं कर पाते हैं। तुलसी के पौधे से निकला 'एरोमा' वायु शुद्धिकरण में बहुत सहायक होता है।

अतः यह निर्विवाद सत्य है कि, विश्वव्यापी प्रदूषण की समस्या का समाधान हमारे वेदों में निहित है। आवश्यकता आज के युग में वेद में बताये गये निर्देशों के मात्र अनुपालन की ही है।